Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, P-ISSN: 3049-172X, Volume 2 | Issue 2 | (Apr – Jun 2025)

समकालीन कविता में राजनीतिक चेतना

नरेंद्र कुमार
सहायक आचार्य हिन्दी, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़, राजस्थान

सारांश :-

समकालीन कविता केवल सौंदर्यबोध या व्यक्तिगत अनुभूति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ का गंभीर साक्ष्य बन गई है। वर्तमान समय में जब लोकतंत्र, नैतिकता, और मानवाधिकार संकट में हैं, तब समकालीन कवि सत्ता के दमन, पाखंड और विडंबना को उजागर करते हैं। रघुवीर सहाय, धूमिल, ऋतुराज, अशोक वाजपेयी, अरुण कमल, एकांत श्रीवास्तव और मदन कश्यप जैसे कवि राजनीति के अनैतिक गठजोड़, चरित्रहीन जन प्रतिनिधियों और कुर्सी की भूख में डूबी व्यवस्था पर कठोर प्रहार करते हैं। यह कविता जनता की आवाज बनकर, उस चुप्पी को तोड़ती है जिसे सत्ता ने भय और दमन के माध्यम से स्थापित किया है। समकालीन कविता सिर्फ़ विरोध नहीं, बल्कि जन-सजगता, लोकतांत्रिक चेतना और नैतिक मूल्यबोध की पुकार है।

मुख्य शब्द :- समकालीन कविता,राजनीतिक चेतना,राजनीतिक विडंबना,कविता में यथार्थबोध,सांस्कृतिक अवमूल्यन।

शोध पत्र का मुख्य भाग :-

समकालीन कविता अपने व्याकुल समाज की गवाही देती है, उसका दुख समाज का दुख है, उसके सवाल संस्कृति व मूल्यों में आए परिवर्तन को लेकर हैं, क्योंकि कविता समाज से जुड़ी होती है और जब समाज में संकट गहरा रहा हो तो कविता उससे विमुख कैसे रह सकती है। यह कविता उन संकटों की पहचान कराते हुए उनके प्रति सजग करती है। हिंदी के प्रख्यात आलोचक मैनेजर पांडेय के अनुसार "केवल नया ही समकालीन नहीं होता, बल्कि जो सार्थक है वही समकालीन है।"

भारतीय समाज में राजनीति का बहु-आयामी महत्व है। समाज और साहित्य का विकास भी समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों से होता रहा है। तात्कालिक राजनैतिक परिस्थितियाँ साहित्य को काफी प्रभावित करती है। कविता के साथ राजनीति का रिश्ता पुराना है। समकालीन कविता का प्रमुख नारा है - व्यवस्था का विरोध । यह विरोध सही ढंग से किया जा रहा हो या गलत ढंग से, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यह विरोध राजनीतिक-प्रकृति का है।

डॉ. नंदकिशोर नवल के अनुसार "समकालीन कविता मूलतः राजनीतिक कविता है।" समकालीन कविता में राजनीतिक सन्दर्भों, प्रश्नों और घटनाओं का अच्छा-खासा जमावड़ा है। साहित्य को राजनीति से दूर रखने या राजनीति को साहित्य में अस्पृश्य मानने की बात अब नहीं रही। आज का कवि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में गहरी दिलचस्पी रखता है और स्वयं को एक राजनीतिक व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करता है। वरिष्ठ कवि

ऋतुराज किसी अच्छे समकालीन हिन्दी कवि की कविता को अनिवार्य रूप से एक राजनीतिक व्यक्ति की कविता मानते हैं।

समकालीन कवियों के प्रतिनिधि रघुवीर सहाय जीवनासक्त अभिव्यक्तियों की जगह व्यवस्था के प्रति व्यंग्य और यथार्थ का गंभीर विश्लेषण किये हैं उनकी कविताओं में यह मूर्त रूप में देखने को मिलता है। रघुवीर सहाय राजनीतिक विद्रूपताओ, पाखण्ड़ों और झूठ को अपनी कविताओं का विषय बनाये हुये है जन-प्रतिनिधियों के स्तरहीन चरित्र और उनके खोखलेपन, जनता को क्षेत्रवाद, जातिवाद, धर्मवाद आदि में फंसाकर खुद की कुर्सी का साधना करने की प्रवृत्ति, कुर्सी की सेवा करने की आकंठ लालसा, वृद्ध होकर शिशुओं की तरह कुर्सी के लिये लड़ते रहने के बचपने को देखकर सहाय जी इनके चरित्रों को बेनकाब करते हुये कहते है-

"सिंहासन ऊँचा है, सभाध्यक्ष छोटा है
अगणित पिताओं के
एक परिवार के
मुँह बाए बैठे हैं लड़के सरकार के
लूले, काने, बहरे विविध प्रकार के
हल्की-सी दुर्गन्ध से भर गया है सभाकक्ष
सुनो वहाँ कहता है
मेरी हत्या की करूण गाथा
हँसती हे सभा, तोंद मटका
उठाकर
अकेले पराजित सदस्य की व्यथा पर"

देश के सभी राजनीतिक दलों को एक ही थैली के चट्टे-बट्टे मानते हुए सहाय जी लिखते हैं -

"टूटते-टूटते
जिस जगह आकर विश्वास हो जाएगा कि
बीस साल धोखा दिया गया
वहीं मुझे फिर कहा जाएगा विश्वास करने को
पूछेगा संसद में भोला-भाला मंत्री
मामला बताओ हम कार्रवाई करेंगे
हाय-हाय करते हुआ, हां-हां करता हुआ' है-है करता हुआ
दल का दल
पाप छिपा रखने के लिए एकजुट होगा
जितना बडा दल होगा, उतना ही खायेगा देश को।"

समकालीन कविता में राजनीति के अनैतिक, अमानवीय, क्रूर, स्वार्थी एवं आतंकमय चरित्र का भण्डाफोड़ किया गया है। "मनुष्य की पीड़ा को सामाजिक अर्थ देने के प्रयत्न में यह कविता, वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था और स्वार्थी राजनीति से उसके अनैतिक गठजोड़ से उत्पन्न, बहुस्तरीय जटिलताओं को उघाड़ते हुए, पाठक के चिन्तन का अविस्मरणीय अंग बनने के लिए प्रयत्नशील है।" (सुखवीर सिंह, हिन्दी कविता की समकालीन चेतना)

राजनीति पर हर छोटे-बड़े समकालीन कवियों ने कटाक्ष किया है। लोकतंत्र में नेता और मतदाता सिक्के के दो पहलू की तरह है, जहां नेताओं का चारित्रिक पतन समकालिकता चिंतन का विषय है वहीं मतदाताओं के तालवी प्रवृत्ति भी सांगोपांग चिंतनीय है, जिसका प्रतिबिम्ब समकालीन कविता में सहज सुलभ है।

वर्तमान समय में सत्य का स्थान झूठ ने, सरलता का पाखण्ड ने, कर्तव्य का चाटुकारिता ने एवं न्याय का स्थान पक्षपात ने ग्रहण कर लिया है और ये आज के समाज के मूल्य हो गये हैं-

"अतिरिक्त गुण और बेईमानी
प्रमाणित हो चुकी है।
दोहरा व्यक्तित्व, पाखण्ड, चाटुकारिता
प्रचार, पक्षपात और उलझन ।"

समकालीन कविता जिस परिवेश में पैदा हुई यह एक तरह से जीवन-मूल्यों की अराजकता का युग है । इसकी दिशा विघटन की ओर और दशा आस्थाहीन भावशून्य-गतिरोध की ओर अग्रसर है। यह सांस्कृतिक मूल्यों के संकट का समय है, यह समस्याओं के बोध का युग है, समाधान का नहीं। संयुक्त परिवार का विघटन, बढ़ती हुई आर्थिक असमानता, राजनीतिक अस्थिरता और सांस्कृतिक अवमूल्यन के फलस्वरूप इस युग में पहले से स्वीकृत जीवन-मूल्यों के प्रति, प्रारम्भ में, सन्देह व्यक्त किया गया और, तदुपरान्त, उन्हें अनुपयोगी पाकर बिल्कुल नकार दिया गया। घर, गाँव, नगर और देश के स्तर पर सामाजिक सम्बन्धों में आये परिवर्तनों ने भी पुराने मूल्यों का स्थानान्तरण कर, नये जीवन मूल्यों को स्थापित कर दिया है। अर्थहीन होती संज्ञाएँ इस युग के काव्य के निशाने पर रही हैं -

"मैंने अहिंसा को,
एक सत्तारुढ़ शब्द का गला काटते हुए देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें
भरते हुए देखा
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा ...।"

देश के संविधान और लोकतंत्र में आस्था रखनेवाला हिन्दी और भारतीय भाषाओं का कोई भी संवेदनशील कवि-लेखक सजग नागरिक अपने समय की राजनीति से अप्रभावित नहीं रहा है ।लोकतांत्रिक व्यवस्था में विश्वास रखनेवाले हिन्दी के हर बड़े कवि ने इस माहौल पर गहरी निराशा और नाराज़गी प्रकट करते हुए बहुत तल्ख तेवर में कविताओं के माध्यम से अपनी पीड़ा और चिन्ताएँ व्यक्त की है,राजनैतिक परिदृश्य की वास्तविकता

को बेलिहाज प्रस्तुत किया है। इस दुर्दशा और राजनैतिक पतन को प्रसिद्ध कवि ऋतुराज अपनी कविता 'इक्कीसवीं सदी की लड़ाइयाँ' में लिखते हैं -

"भारत के संदर्भ में राजशाही और लोकतंत्र में भेद मिट रहा है
इसकी मिसाल दूसरी क्या हो सकती है कि सारे दलों की
एक मात्र चिन्ता यह हो कि प्रधान मंत्री कौन होगा ?
भले ही बहुमत मिले या न मिले
गठजोड़ में होने की अभी से क़ीमतें तय की जा रही हैं
अभी से सत्ता की बंदर-बांट में हिस्से तय हो रहे हैं।"

समकालीन हिंदी कविता सत्ता के चेहरे और चरित्र की असलियत को उजागर करते हुए उसकी तीखी आलोचना करती है। समकालीन कवि सत्ता, साम्प्रदायिक और ध्रुवीकरण की राजनीति से भलीभांति परिचित है और उसका निर्भीकता से भंडाफोड़ करते हुए दिखाई देते हैं। वे कविताओं में सत्ता की मनमानी या तानाशाही प्रवृत्ति की कड़ी निंदा करते है और उसकी भ्रष्टाचारी व्यवस्था का पर्दाफाश भी। साथ ही वे सत्ता के अन्यायकारी, अत्याचारी और अराजकतावादी नीतियों का प्रतिरोध करते हुए जनहित की वकालत करते है।

समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर कवि एकान्त श्रीवास्तव ने अपनी कविता में सत्ता की मनमानी, तानाशाही और दमन का पर्दाफाश किया है। इस दृष्टि से उनका प्रसिद्ध कविता संकलन 'बीज से फूल तक' विशेष उल्लेखनीय है। प्रस्तुत संग्रह की मृत्युदण्ड और 'ताजमहल' कविताओं में सत्ता की तानाशाही को देखा जा सकता है। आजकल ऐसे व्यक्ति को मृत्युदण्ड दिया जाता है. जो जनतंत्र का सपना देख रहा है। कवि लिखते है कि यहाँ जनतन्त्र सपना देखना अपराध है। इस अपराध की सजा फांसी है जो मुझे दी जा रही है। कवि ने 'ताजमहल' कविता में सत्ता के दमनकारी रूप को उजागर किया है:-

"यों भी इतिहास गवाह है
कि जो ताजमहल बनाता है।
उसके दोनों हाथ काट दिये जाते हैं।"

इस तरह कवि ने सत्ता के अन्याय, अत्याचार और अराजकता का अंकन किया है।

कवि मदन कश्यप ने ''छवि की चिंता' 'कविता में देश की दूर्गति के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराया है। कवि के अनुसार देश की छवि भ्रष्टाचार, जातिवाद, अपहरण, गरीबी, अपराध आदि के कारण खराब हो रही है। इसीलिए सरकार सोचने पर मजबूर थी और छवि को सुधारने के लिए योजना बना रही थी। जनता को अपनी छवि की चिंता नहीं थी। उन्हें तो दो वक्त की रोटी जरूरी थी। सरकार ने सामाजिक न्याय का आश्वासन दिया था, लेकिन उसकी गति काफी धीमी थी। दुनिया तेज दौड़ रही थी, लेकिन हमारे देश में बहुत कुछ बरसों से रुका पड़ा था। कश्यप जी लिखते है-

"इस बेहद तेज भागनी दुनिया में

यहाँ बहुत कुछ बरसों से रुका पड़ा था
और जो थोड़ा कुछ गतिशील था
उसकी भी चाल ऐसी लंगड़ी थी
कि देखते ही हंसी आ जाती थी
जाहिरन इससे भी छवि खराब हो रही थी।"

अशोक वाजपेयी की कविता "सन्नाटा" एक अत्यंत सूक्ष्म लेकिन गंभीर राजनीतिक और सामाजिक चेतना को व्यक्त करती है। यह कविता एक ऐसे माहौल को रेखांकित करती है जहाँ डर, निष्क्रियता, और चुप्पी की संस्कृति ने लोगों को जकड़ लिया है। अशोक वाजपेयी इस 'सन्नाटे' को केवल एक बाहरी स्थिति नहीं, बल्कि सत्ता द्वारा थोपे गए मनोवैज्ञानिक माहौल के रूप में देखते हैं।

"सन्नाटा सिर्फ़ चुप्पी नहीं है
वह फैलाया गया है
ताकि कुछ न सुना जा सके
कुछ न कहा जा सके
ताकि डर बना रहे
ताकि प्रश्न न उठे
ताकि विरोध न हो"

यह कविता हमें याद दिलाती है कि जब चारों ओर चुप्पी हो, तब बोलना सबसे बड़ा साहस होता है।यह एक ऐसी कविता है जो मनुष्य की नैतिक जागरूकता और लोकतांत्रिक जिम्मेदारी को बहुत शालीन, पर अत्यंत शक्तिशाली ढंग से जगाती है।

अरुण कमल की कविता में सत्ता के दमन, शोषण और असमानता के खिलाफ एक स्पष्ट विद्रोह दिखाई देता है। उनकी कविताएँ आम आदमी की पीड़ा, संघर्ष और उम्मीदों को व्यक्त करती हैं। सवाल पूछने की आज़ादी का हनन,सत्ता के दमन की क्रूरता और लोकतंत्र के टूटने का संकेत अरुण कमल की कविता में स्पष्ट देखे जा सकते हैं-

"जहाँ चुप रहने को मजबूर किया जाता है,
वहाँ आवाज़ों का खो जाना स्वाभाविक है।
प्रश्नों को निस्तेज कर दिया जाता है,
और सच को दफन कर दिया जाता है।"
"सत्ता की दीवारें गुमसुम हैं,
पर उनके पीछे खौफ का साया छाया रहता है।
जो सवाल उठाता है, उसे डराया जाता है,
उसका अस्तित्व मिटाने की साजिशें रची जाती हैं।"

लीलाधर जगूड़ी की 'नाटक जारी है' कविता स्वतंत्र भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति तथा व्यक्ति की नियति को हमारे सामने रखती है। यह ऐसा नाटक है जिसमें परिवेश में व्याप्त अमानवीयता और कुरूपता को उघाड़ा और उजागर किया गया है। यह नाटक बताता है कि जीवन में आत्मीयता, दया और करुणा का स्थान नहीं रहा है।

"ठीक उस समय जब पवित्र चेहरों वाले लोग,
खतरनाक विचारों से भरे हुए,
संस्कृति के हजार विनाश सुलगा कर,
उसे सम्पूर्ण मानव की तरह उड़ाना चाहते थे।"

आज राजनीति ने जो अमानवीय स्वार्थांधता विकसित की है वह सच्चे सहज मनुष्य के श्रम को निगल रही है। लीलाधर जगूडी की "इस व्यवस्था में" नामक कविता से कुछ पंक्तियों द्रष्टव्य है -

"नौकरी के लिए पढ़कर
सिफारिश से कुर्सी पर चढ़कर मैंने जाना है
इस दरमियान
जनतंत्र में
बिल्कुल नया जमाना
नागरिकता पर
सबसे बड़ा रंदा थाना है।"

अपनी लंबी कविता "पटकथा" में धूमिल ने समकालीन हिन्दुस्तान की विसंगतियों और विडम्बनाओं का असली चरित्र प्रस्तुत किया है-

"सड़कों में होता हूँ
बहसों में होता हूँ
रह-रह कर चहकता हूँ
लेकिन हर बार वापस घर लौटकर
कमरे के अपने एकांत में
जूते से निकाले गए पाँव सा महकता हूँ।"

धूमिल की कविता समकालीन भारतीय राजनीति की गहरी विडंबना और आलोचना को दर्शाती हैं। वर्तमान राजनीतिक स्थितियों पर व्यंग्य करते हुए धूमिल लिखते हैं -

"दरअसल अपने यहाँ प्रजातंत्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान

मदारी की भाषा है"

X X X X

"अपने यहाँ संसद
तेल की यह घानी है
जिसमें आधा तेल है
और आधा पानी है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन हिंदी कविता में राजनीतिक चेतना प्रमुख रूप से उभरकर सामने आई है। यह कविता अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक विडंबनाओं, सत्ता की अमानवीयता और व्यवस्था की विफलताओं पर गहरी प्रतिक्रिया है। समकालीन कवि समाज की पीड़ा को महसूस करते हुए सत्ता के अन्याय, भ्रष्टाचार, जातिवाद, सांप्रदायिकता और शोषण का विरोध करते हैं। समकालीन कविता न केवल सवाल पूछती है, बल्कि पाठकों को सोचने और बदलने के लिए प्रेरित भी करती है। यह कविता अपने समय की राजनीतिक गवाही और प्रतिरोध की सशक्त ध्वनि बन चुकी है।

संदर्भ सूची :-

1. 1.अरुण कमल. (2020). नये इलाके में. वाणी प्रकाशन.
2. 2.एकांत श्रीवास्तव. (2003). बीज से फूल तक (प्रथम संस्करण). राजकमल प्रकाशन.
3. 3.धूमिल. (2019). संसद से सड़क तक (पाँचवाँ संस्करण). राजकमल प्रकाशन.
4. 4.धूमिल. (2023). कल सुनना मुझे. वाणी प्रकाशन.
5. 5.लीलाधर जगूड़ी. (2008). नाटक जारी है (प्रथम संस्करण). पंचशील प्रकाशन.
6. 6.मदन कश्यप. (2006). कुरूज (प्रथम संस्करण). राजकमल प्रकाशन.
7. 7.रघुवीर सहाय. (2009). आत्महत्या के विरुद्ध. राजकमल प्रकाशन.
8. 8.ऋतुराज. (2019). हम उत्तर मुक्तिबोध हैं. कलमकार मंच.
9. 9.शिवकुमार शर्मा. (2006). हिंदी साहित्य: युग और प्रवृत्तियां. अशोक प्रकाशन.
10. 10.बच्चन सिंह. (2025). हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. राधाकृष्ण प्रकाशन.
11. 11.विश्वनाथ प्रसाद तिवारी. (2010). समकालीन हिंदी कविता. राजकमल प्रकाशन.